NOVATEUR PUBLICATIONS
JournalNX-A Multidisciplinary Peer Reviewed Journal
ISSN No:2581-4230
VOLUME 3, ISSUE 6, June. -2017

Dr. Lajvanti

Dept. of Hindi

Govt. College Kosli, Haryana

अमरकांत रचित 'कटीली राह के फूल' में शिक्षा जगत का यथार्थ

Abstract

शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का सशक्त साधन है। यह सामाजिक परिवर्तन का आधार भी तैयार करती है। शिक्षा को जितना बढ़ावा दिया जाएगा, उतना ही सामाजिक परिवर्तन सुगम होगा। आधुनिक विद्यार्थी स्वच्छन्द प्रवृत्ति का है। उसका ध्यान शिक्षा की बजाय अन्य दुष्प्रवृत्तियों की ओर अधिक है। महाविद्यालयों में विद्यार्थी वर्ग की अनुपस्थिति रहती है, जिससे वे अन्य मेधावी छात्रों से परीक्षा में पिछड़ जाते हैं। आनन–फानन में बटोरी गई सहायक सामग्री अर्थात् रट्टा प्रवृत्ति से परीक्षा उतीर्ण करना चाहते हैं। उत्तराधुनिक विद्यार्थी मेहनत नहीं करना चाहता। कॉलेज में शिक्षक विषय संबंधी नोट्स देते हैं जिन्हें रट–कर परीक्षा उतीर्ण कर लेते हैं।

Introduction

इसी प्रवृत्ति को उजागर करते हुए श्रेष्ठ व जगप्रसिद्ध नीरोत्तमा शर्मा अपने लेख में कुछ इस प्रकार से लिखती हैं– ''आधुनिक छात्र वर्ग शिक्षा का उद्देश्य परीक्षा उतीर्ण करना मात्र है ज्ञानोपलब्धि नहीं।''

छात्रों के साथ मित्रवत व्यवहार न होने के कारण भी विद्यार्थी वर्ग शिक्षा से विमुख होते जा रहे हैं। डॉ. एम.एस. सचदेवा के अनुसार ''सोलह वर्ष का होने पर उसके साथ मित्र जैसा व्यवहार करें। यह छात्रों के हित में होगा।''

वैज्ञानिक एवं तकनीकी युग में विद्यार्थी का लक्ष्य केवल नौकरी प्राप्त करना रह गया है। रूसों ने भी शैक्षणिक प्रक्रिया में बालक को केन्द्रीय, मुख्य एवं सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। विद्यार्थी के अनुरूप शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए। शिक्षा अपने उद्देश्य, अपनी प्रक्रिया एवं अपने अर्थ सम्पूर्ण रूप से बालक के जीवन एवं अनुभव में ढूंढती है।

वर्तमान युग में विद्यार्थियों में संघर्षशीलता का अभाव है। यह मनोवृति दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। उनमें संघर्ष न करने की प्रवृत्ति इतनी घर कर जाती है कि उन्हें जीवनपर्यन्त, इसके दुष्परिणामों को भुगतना पड़ता है। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री लता पांडे के अनुसार ''शिक्षक का बच्चे से प्यार, उसके प्रति विश्वास तथा उससे आत्मीय व्यवहार ही बच्चे में पढ़ने का कौशल सही ढंग से विकसित कर सकता है।''

भारत अभी भी निर्धनता के शाप से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाया है। भारतीय जनसंख्या का एक बहुत बड़ा वर्ग अभी भी गरीबी रेखा से नीचे रहने को विवश है। दिनभर के अथक परिश्रम के बावजूद उन्हें इतना पारिश्रमिक नहीं मिलता, जिससे वे शिक्षा का उचित खर्च वहन कर सके, दो जून की रोटी मिल जाए वही काफी है। इसी अभावग्रस्तता के चलते शिक्षा बीच में ही छूट जाती है।

आज केवल बच्चों के ही लाइफस्टाइल में बदलाव नहीं आया है बल्कि माता–पिता भी बदल गए हैं। उनके पास अब बच्चों के लिए ज्यादा समय नहीं है क्योंकि माँ को अपनी किटीपार्टी भी अटैंड करनी है, घंटों अपनी सहेलियों से फोन पर बतियाना है, शॉपिंग के लिए भी समय निकालना होता है। भागदौड़ के दौर में माता–पिता के पास समय नहीं बचता । जब बच्चा कोई सवाल अपने माता–पिता से पूछता है तो उसको टाल दिया जाता है और बच्चे का मन पढ़ाई से हट जाता है जिसका परिणाम होता है कक्षा को अधूरा छोड़ देना या पढ़ाई से विमुखता।

वे विद्यार्थी जो महाविद्यालयों के बाद अतिरिक्त समय कार्य करके अपनी पढ़ाई का खर्च स्वयं वहन करते हैं या बहुत से निर्धन परिवारों के बच्चे औपचारिक शिक्षा प्रदान करने वाले विद्यालयों/महाविद्यालयों में प्रवेश तो ले लेते हैं, परन्तु इस प्रकार की शिक्षा निरन्तर जारी रखने के लिए धन नहीं जुटा पाते तथा इसे बीच में ही छोड़ देते हैं। परिणामस्वरूप अपव्यय तथा अवरोध होता है। अवरोध इस प्रकार का भी होता है कि पर्याप्त सुविधाओं के न होने के कारण बच्चा/विद्यार्थी बार–बार एक कक्षा में अनुतीर्ण होता रहता है।

स्कूली शिक्षा से निकलकर जब विद्यार्थी महाविद्यालय/कॉलेज में प्रवेश पाता है तो वह कई प्रतिबंधों से मुक्त हो जाता है। स्कूलों जैसी रोक–टोक, शिक्षक का हस्तक्षेप या अन्य प्रकार की गतिविधियों से पूर्णतः मुक्त हो जाता है। इस कारण वह कुछ स्वच्छन्द प्रवृत्ति का सा हो जाता है, जिससे वह दृष्प्रवतियों की ओर अग्रसर हो जाता है। इसी विषय वस्तु को केन्द्रित करते हुए लेखक नरेश कुमार कहते हैं– ''महाविद्यालयों में प्रवेश पाते ही विद्यार्थी स्वच्छन्द वातावरण का अनुभव करने लगता है।''

महाविद्यालयों में भिन्न–भिन्न संगठनों की घुमक्कड़ प्रवृत्ति अर्थात् आवारा प्रवृत्ति उसे अपनी ओर आकर्षित करती है। वह समूह के अन्य लड़कों से मिलकर वह दुष्प्रवृत्तियों में सम्मिलित हो जाता है। धूम्रपान, मदिरापान, विभिन्न प्रकार के नशे, फिजूल खर्ची उसके शौक बन जाते हैं। यह दुष्प्रवतियां विद्यार्थी को शारीरिक व मानसिक रूप से हानि पहुंचाती हैं। इन दुष्प्रवृत्तियों से ग्रस्त विद्यार्थी का चारित्रिक एवं नैतिक पतन प्रारम्भ हो जाता है। उत्तर आधुनिक युग में मनुष्य दोहरे चरित्र को जी रहा है।

आधुनिक युग की भागदौड़ में मनुष्य अपने नैतिक चरित्र के विषय में सोचने का भी समय नहीं होता। इस अंधी दौड़ में वह भले–बुरे का ख्याल नहीं रख पाता

है। अतः यह अनेक विसंगतियो से ग्रस्त हो जाता है। स्वास्थ्य की कमी, धन की कमी, जागरूकता की कमी के कारण ही विसंगतियां फैलती जा रही हैं। हमें समाज को इसके प्रति सचेत करना ही होगा।

मनुष्य की उत्पति के समय से ही वेदों, पुराणों, उपनिषदों, सूक्तों, आदि में मनुष्य जीवन के लिए नैतिक मूल्यों का प्रावधान है अर्थात् इन ग्रंथों में मनुष्य को जीवन भोगने के लिए मूल्यपरक शिक्षा दी गई है। पौराणिक ग्रंथ रामायण, महाभारत, भागवद्गीता, हितोपदेश, पंचतंत्र आदि मनुष्य के चरित्र के लिए अनुकरणीय ग्रंथ हैं। तुलसी का 'रामचरित' मनुष्य नैतिक मूल्यों का संवाद ही ग्रंथ है। उदीयमान लेखक डॉ. एम.एस. सचदेवा मनुष्य का संबंध नैतिकता से जोड़ते हुए कहते हैं– ''नैतिकता से अलंकृति शिक्षा को भारतीय संस्कृति से जोड़ने के लिए शिक्षा आयोग ने शिक्षार्थियों में सामाजिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों के पोषण पर बहुत बल दिया है।''

भारत में आदिकाल से ही नैतिक शिक्षा विराजमान रही है। भारत में धार्मिक व नैतिक शिक्षा ने सदा ही एक महत्वपूर्ण स्थान पाया है।सुप्रसिद्ध लेखक प्रमोद कुमार दुबे अपने एक लेख में व्यक्ति के सद्गुणों, नैतिक मूल्यों व आध्यात्मिक गुणों के बारे में लिखते हुए कहते हैं– ''समाज व देश के हर व्यक्ति व वर्ग यह उम्मीद लगाता है कि उनके बच्चों के भीतर सद्गुणों, नैतिक मूल्यों तथा अध्यात्म गुणों का विकास हो और इन गुणों को वे अगली पीढ़ी को विरास्त में दें।''

महाविद्यालयों का उन्मुक्त स्वच्छन्द वातावरण युवा वर्ग को अपनी ओर आकर्षित करता है। छात्र और छात्राओं की सम्मिलित कक्षाएं अजनबी सहपाठियों से घुलना–मिलना, बातचीत करने से एक–दूसरे के प्रति आकर्षण का भाव होने से वे प्रेमपाश में बंध जाते हैं। प्रेम प्रसंग में पड़े युवक–युवतियाँ अपने लक्ष्यों से भटक

जाते हैं जिससे नैतिक पतन के साथ–साथ उनका जीवन भी अंधकारमय हो जाता है।

शिक्षार्थी का नैतिक और आध्यात्मिक विकास शिक्षा का दूसरा उद्देश्य होना चाहिए। इसलिए विद्यार्थी को नैतिकता की शिक्षा अवश्य दी जानी चाहिए। शिक्षा के द्वारा एक व्यक्ति को जीवन के सौन्दर्य की प्रशंसा की भावना विकसित करने योग्य बनाना चाहिए। यह गुण तभी आ सकते हैं जब विद्यार्थी नैतिक और आध्यात्मिक रूप से जागरूक हों और यह केवल नैतिक शिक्षा से ही संभव है।

लेकिन यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि आधुनिक विद्यार्थी नैतिकता से कोसों दूर होता जा रहा है। वह केवल परिणाम का आकांक्षी है । उच्च परिणामों की लालसा में वह बहुत से अनुचित मार्गों पर बढ़ सकता है और पतनोन्मुख हो जाता है। उच्चाकाक्षाओं में अच्छे अंक लेने के लिए विद्यार्थी परिश्रम करने की बजाय अपने अध्यापकगणों की चाटूकारिता अर्थात् चापलूसी करते हैं। अनैतिक कार्य करने से भी परहेज नहीं करते। इन्हीं कारणों के चलते घूस जैसी प्रवृत्तियां शिक्षा में प्रवेश कर गई। शिक्षा एक व्यवसाय बनकर रह गया। जिन छात्रों के अभिभावकों की आय कम है। उनके लिए शिक्षा ग्रहण कर पाना दुसाध्य हो गया है शिक्षा का व्यवसायीकरण होता जा रहा है अनेक बढ़ते निजी शिक्षण संस्थान चिंता का विषय बनते जा रहे हैं।

बच्चे की पहली गुरु उसकी माँ होती है और उसका दूसरा गुरु शिक्षक होता है जो उसे विसंगतियों से बाहर निकालकर श्रेष्ठ मार्ग की ओर उन्मुख करता है। हिन्दी साहित्य के शिरोमणि कवि अज्ञेय जी इसी संदर्भ में कहते हैं– ''भारतीय संस्कृति में गुरु–शिष्य परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है, इसमें गुरु को परमात्मा का दर्जा प्राप्त था।''

गुरु के घर में रह कर सभी समुदायों के बच्चे आपस में प्रेमभाव से शिक्षा ग्रहण करते थे। उनमें तनिक भी भेदभाव नहीं होता था। शिक्षा के क्षेत्र में मैकॉले की शिक्षा का प्रचार–प्रसार होने से शिक्षा के क्षेत्र में अनगिनत बुराईयां उत्पन्न हो गई हैं, जिनमें से रैगिंग की समस्या हमारे सामने है। इस समस्या में वरिष्ठ छात्र अपने कनिष्ठ छात्रों का मानसिक, शारीरिक, नैतिक, हर स्तर पर शोषण करते हैं। वरिष्ठ छात्र नए छात्रों का परिचय प्राप्त करने के नाम पर प्रताड़ित करते हैं। रैगिंग के कारण छात्रों ने आत्महत्याएं भी की हैं। हजारों छात्र रैगिंग के भूत से डर कर शिक्षा अधूरी छोड़ देते हैं। सरकार, शिक्षण संस्थानों व अध्यापकों को इसके खिलाफ कठोर नियमों को लागु करना होगा।

कॉलेज तथा विश्वविद्यालयों में रैगिंग की समस्या बहुत जटिल हो रही है और व्यापक भी। पहले इन संस्थाओं में प्रवेश हेतु दर–दर की खाक छाननी पड़ती है। बेचारे अभ्यर्थी यत्र–तत्र–सर्वत्र भागते फिरते हैं। जब बड़ी मुश्किल से कहीं दाखिला मिलता है, तो रैगिंग का भय सताता है। व्यावसायिक संस्थाओं में तो स्थिति और भी गंभीर होती है। रैगिंग के बारे में सभी चिंतित हो उठते हैं, पर समय के बाद भूल जाते हैं। फिर अगले वर्ष फिर इसकी याद आ जाती हैं। लेकिन अब रैगिंग के भयानक रूप को देखकर सभी विचलित हो गए हैं। उच्चतम न्यायालय ने सरकार को विशेष हिदायतें दी हैं कि रैगिंग को रोकने की पूरी व्यवस्था की जाए। इसलिये कई एक पग इस कार्य के लिए उठाए गए हैं।

शिक्षा के तीन ही मुख्य तत्त्व हैं–अध्यापन, अध्ययन और मूल्यांकन या परीक्षा। तीनों एक दूसरे के साथ जुड़े हैं, एक के बिना दूसरे का कोई अर्थ नहीं। यदि अध्यापकों ने पढ़ाया नहीं, तो विद्यार्थियों ने कुछ पढ़ा नहीं, मूल्यांकन का सवाल ही नहीं उठता। इसलिये तीनों अंगों में सुधार लाने की जरूरत सदा रहती है। परन्तु हम सिर्फ मार्च/अप्रैल में परीक्षाओं के बारे में सोचते हैं, या समझो इनकी आलोचना

करते हैं, कभी पुरस्कार वितरक समारोहों में इसकी भर्त्सना कर दी जाती है। हमारा 'सिस्टम' ही खराब है, यह आम सुना जाता है। भई, खराब है तो इसे ठीक किस ने, कब करना है? हमें सिर्फ नकारात्मक आलोचना सुनने को मिलती है, कोई कारगर सुधार सामने नहीं आते अनेक परीक्षा सुधार जो अन्य देशों में सफल है, यहां बुरी तरह से फेल हो जाते हैं। फिर, कोई नकल को दोषी मानता है, कोई प्रश्न–पत्रों को, कोई मूल्यांकन को, तो कोई पाठ्यक्रमों को। ऐसा लगता है कि हम सब केवल दोष निकालने में ही पारंगत हो गए हों।

हर व्यक्ति के लिए आत्मविश्वास का होना जरूरी है। आत्म–निर्भर व्यक्ति हरेक जगह पूर्ण होता है और हर स्थान पर उसक आत्म–विश्वास उसके साथ होता है। जब व्यक्ति में आत्म विश्वास की कमी होती है तो वह अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अनुचित मार्ग अपनाता है।

शिक्षा जगत में एक आम समस्या है, नकल की समस्या। शिक्षा जगत में नकल की समस्या दिनोदिन बढ़ती जा रही है, छात्र उच्च अंकों की प्राप्ति हेतु अनुचित साधनों का प्रयोग करते हैं। वे साम, दाम, दण्ड आदि द्वारा अच्छे अंकों को प्राप्त करना चाहते हैं। इसका मुख्य कारण अभिभावकों की उच्च महत्वाकांक्षाएं हैं। हमारी शिक्षा प्रणाली भी अंकों पर आधारित है जिसमें व्यावहारिकता की कमी है और यह केवल पुस्तकीय ज्ञान पर आधारित है।

माता–पिता के बीच बिगड़ते रिश्तों का असर भी बच्चों पर पड़ता है, बच्चा जो सही समझता है वही करता है, क्योंकि माता–पिता तो आपस में इतने उलझे रहते हैं कि उनके पास बालकों के लिए समय ही नहीं होता। माँ को लगता है कि पिता को बच्चों पर ध्यान देना चाहिए जबकि पिता को लगता है कि बच्चों की जिम्मेदारी माँ की होती है और जब बच्चा कोई सवाल आदि पूछता है तो उसको एक टका सा जवाब माता–पिता की तरफ से मिलता है और वह गृह कार्य सम्पन्न

नहीं कर पाता और यही कारण कक्षा में अनुपस्थिति का कारण बनता है और महाविद्यालयों तक जाते–जाते यह छात्रों की आदत में तबदील हो जाती है। औपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में उपस्थिति महत्वपूर्ण होती है। जबकि विद्यार्थी वर्ग विद्यालय या महाविद्यालयों में नियमित उपस्थिति नहीं देते। विद्यार्थी के बारे में विद्वानों ने कहा कि बालक में केन्द्रीय शिक्षा का होना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। रूसो ने शैक्षणिक प्रक्रिया में बालक को केन्द्रीय, मुख्य एवं सबसे महत्वपूर्ण स्थान दिया है। बालक की प्रवृत्ति के अनुसार उसे शिक्षा दी जानी चाहिए। रूसो ने कहा, ''शिक्षा अपने उद्देश्य, अपनी प्रक्रिया एवं अपने अर्थ सम्पूर्ण रूप से बालक के जीवन एवं अनुभव में ढूंढती है।''

बाल केन्द्रीय शिक्षा होते हुए भी हम शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। इसके भी बहुत से कारण हैं। भारतवर्ष में इतने अवकाश होते हैं तथा इतनी हड़तालें होती हैं कि एक विद्यार्थी के केवल 365 दिनों में से मात्र 80–90 दिन में ही उपस्थिति हो पाती है। छात्र–छात्रों के अतिरिक्त शिक्षक वर्ग को मतदान, मतगणना, जनगणना, पोलियों उन्मूलन निवारण जैसे कार्यक्रमों का अतिरिक्त कार्यभार भी दिया जाता है। परिणामस्वरूप उनके पास इतना समय नहीं रहता कि वे बच्चों को पढ़ा सके या समय पर पाठ्यक्रम पूर्ण करवा सकें।

सन्दर्भ–ग्रंथ सूची

1. डॉ. आत्माराम **इक्कीसवीं सदी में शिक्षा**
   अखिल भारती, 3014 चर्खेवालान,
   दिल्ली–110006
2. गोपाल कृष्ण अग्रवाल **मानव समाज**,
   लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

3. गोपाल कृष्ण अग्रवाल **सामाजिक विघटन,**
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1972

4. जी.आर. मदान **समाज शास्त्र के सिद्धान्त**
सरस्वती सदन, 7 यू.ए. नगर,
दिल्ली–1969

5. डॉ. डी.एल. शर्मा **शिक्षा तथा भारतीय समाज**
सूर्य पब्लिकेशन c/o आर लाल बुक डिपो
सप्तम संशोधित संस्करण–2007
(निकट गवर्नमेण्ट कॉलेज),
मेरठ–250001

6. एन.आर.स्वरूप सक्सेना, शिखा चतुर्वेदी **उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा**
सूर्य पब्लिकेशन, नवीन संस्करण 2006
निकट गवर्नमेन्ट इण्टर कॉलेज
मेरठ–250001

7. एम.एम. लबानिया, शशि के. जैन **सैद्धान्तिक समाज शास्त्र**
रिसर्च पब्लिकेशन्स, त्रिपोलिया बाजार
जयपुर–2

8. बी.डी. गुप्ता **ग्रामीण समाज शास्त्र**
सीता प्रकाशन, हाथरस, 1980

9. रवीन्द्रनाथ मुकर्जी **समाज शास्त्र के सिद्धान्त**
सरस्वती सदन, मसूरी, प्रथम संस्करण

1965

10. लाल एवं पलोड़ **उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा**
विनय रखेजा, c/o आर लाल बुक डिपो
निकट गवर्नमेण्ट कॉलेज, मेरठ–250001
संस्करण–2007

11. विद्याभूषण एवं आर. सचदेवा **समाज शास्त्र के सिद्धान्त**
किताब महल, दिल्ली–1990

12. शम्भूनाथ त्रिपाठी **समाज शास्त्र विश्वकोष**
किताब घर, कानपुर, संस्करण–1980

13. डॉ. एस.के. मंगल **शिक्षण एवं अधिकगम का मनोविज्ञान**
टन्डन पब्लिकेशन, बुक मार्किट,
लुधियाना–141008

14. सरला दूबे **सामाजिक विघटन**
विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर,
दिल्ली। नवम संस्करण–2000

15. डॉ. सुरेश भटनागर, डॉ. सुरेश जोशी **शिक्षण–अधिगम का मनोविज्ञान**
सूर्य पब्लिकेशन, निकट गवर्नमेण्ट
कॉलेज, मेरठ–250001,
संस्करण–2008